समालोचनार्थ

उल्टी खोपड़ी

उल्टी खोपड़ी योगियों की है या भोगियों की, इह लोकवादियों की है या परलोक वादियों की है, राजनैतिकों की है या अध्यात्मवादियों की, यह अन्दर देखिए।

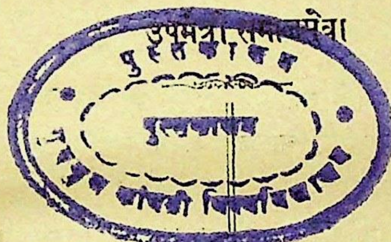
लेखक
शंकरदेव वेदालंकार M. A.
समाजसेवा उपमंत्री
(हैदराबाद—राज्य)

प्रथमावृत्ति
५०००

मूल्य
भारती ।=)

उलटी खोपड़ी

शंकरदेव वेदालंकार, एम. ए.



प्रकाशक :—

वेदभूषण हिन्दी ऑनर्स

कविराज हरनामदास पब्लिकेशन,

सुल्तानबाजार, हैदराबाद (दक्षिण)



प्रथमावृत्ति ५०००

मूल्य भारती ।=)

दो शब्द !

आज संसार आगे बढ़ता चला जा रहा है। जगत में अधिक से अधिक सुख प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है। वायुयान, बिजली, बेतार के तार कल कारखाने क्या नहीं ? मनुष्य हवा में उड़ते हैं, समुद्र में तैरते हैं, भूमि पर भागते हैं। समुद्र के गर्भको चीरते हुए चले जाते हैं। सीमेंट की सड़क, शहर में चमक, धमक, वस्त्रों की तड़क भड़क रंग राग, नाच नृत्य किस सुख की कमी है।

कोई भी आदमी या राष्ट्र हमारे सुख में बाधक होता है तो उसको नष्ट कर दो, चीर दो, फाड़ दो। अपमान करने वाले को गाड़ दो। धैर्य करो, अहिंसा और क्षमा, और ईश्वर तो कमजोरों और बुजदिलों के बचने की जगह है। जीवन में कम खर्च करो। कहने वाले वह है जिनकी बुद्धि व्यापार में कुशल नही है या जो जानते नहीं कि दुनिया में चालाकी क्या है ?

ऐसे वातावरण में सादा जीवन उच्चविचार का नारा लगाना या अहिंसा, प्रेम और क्षमा का नाम लेना सचमुच उल्टी खोपड़ी वाले ही कर सकते हैं। शत्रुओं को मित्र समझो, तपस्वी बनों, या परमात्मा जिसका जनाजा निकल कर सदियां गुजर गई उसको याद करो छि: ! छि: ! यह तो पागल ही कर सकते हैं। ठोस संसार जो आंखों के सामने प्रत्यक्ष ही है, कह देना यह असत्य है। अशाश्वत है, माया है। हाथ आई हुई सम्पत्ति को लुटादो, झोपड़ी में रहो, ग्रामीण जीवन पसन्द करो। कम व्यय करो, शत्रुका बदला मत लो। युद्ध की तैय्यारी न करो, क्षमा करो। अरे ? दुनियां में कुछ दिन रहना है। इसका पूरा आनन्द न लेकर ऊट पटांग बातें करना वास्तव में उल्टी खोपड़ी के ही नाम हो सकते हैं।

यह पुस्तक इन्हीं विचारों को लेकर प्रस्तुत की गई है।

साधनामन्दिर
२५ मई १९५४ } **शंकरदेव वेदालंकार**

मेरे मित्र शत्रु और शत्रु मित्र हैं

मित्रो ! तुमने मुझे बड़ा धोखा दिया, सचमुच तुम मीठे विष हो, तुमने हमेशा मेरी गलतियों को छिपा कर रखने का प्रयत्न किया और जो कुछ भी मेरे छोटे मोटे गुण थे उन को तिल का ताड़ बना कर मेरे सामने प्रस्तुत किया और इस प्रकार तुमने मुझे सदा अन्धकार में रखा। इस से अधिक धोखे बाज़ और कौन हो सकता है ? हर स्थान पर तुमने मेरी प्रशंसा की और इतनी प्रशंसा की कि प्रशंसा के पुल बांध दिये, मुझे खूब फुलाया और मुझ में झूठा घमण्ड भरा। मैं भी तुम्हारी इस प्रशंसा की आन्धी में बह कर फूला न समाया। मैं एक अक्षर जानता हूँ तो तुमने दस अक्षर जानने की प्रशंसा की। मैंने एक पैसा दान दिया तो तुमने दस पैसे की प्रशंसा की। इस से मेरी उन्नति की अभिलाषा रुक गई। मैंने यही समझ लिया कि अब मुझे अधिक उन्नति की आवश्यकता नहीं, अब मैं सीमा पर पहुंच गया हूं। अब मेरे जैसा न कोई विद्वान है, न कोई बलवान है, न बुद्धिमान, न दानशील। जब मैं तुम से हटकर तुम्हारी की हुई प्रशंसा को सामने रख कर दूसरों के साथ तुलना कर के मैंने देखा तो मैंने अपने अन्दर कुछ नहीं पाया, तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। वास्तव में तुमने मुझे प्रशंसा पर्वत के शिखर पर ले जाकर वहां से मुझे धड़ाम से नीचे पटक दिया। तुम मेरे शत्रु हो।

तुमने यही नहीं कि मेरे तिल जैसे गुणों को ताड़ बना कर मेरी

प्रशंसा की बल्कि दूसरों के ताड़ जैसे गुणों को तिल जैसा बनाकर मेरे सामने प्रकट किया और उन के गुणों को तो कभी तुमने बताया ही नहीं। मुझे समझ नहीं आता कि तुम इतने धोखे बाज़ कैसे निकले। और तो और, तुमने मेरे दुर्गुणों को भी कभी नहीं बताया। रात दिन साथ रहे, देखे, और कभी नहीं बोले। मेरे अन्दर इतनी कहां शक्ति थी कि मैं अपनी आँखों के काजल को अपने आप देख सकता, लेकिन तुम बडे मक्कार निकले। तुम मेरे परम मित्र नहीं परम शत्रु हो। तुम सुन्दर मणिवाले सांप हो।

मेरे शत्रुओ! तुम मुझ से क्यों दूर रहते हो आओ! तुम समीप आओ। मैं तुम को बहुत चाहता हूं और वास्तव में चाहता हूं। तुम ऐसा मत समझो कि मैं तुम को धोखा देना चाहता हूं, तनिक भी नहीं। मैंने आज तुम्हारे हृदय की स्वच्छता को जान लिया है। तुम स्वच्छ हो निर्मल हो, मेरे मित्र हो और सच्चे हितैषी हो। मैं बहुत ही बडे धोखे में था कि तुम शत्रु हो। और मैं तुमको विश्वास दिलाता हूं। कि तुम्हारे लिए मेरा हृदय पहले भी स्वच्छ था और अब भी स्वच्छ है केवल बीच में इन मित्र कहलाने वाले शत्रुओं ने मेरे और तुम्हारे बीच में दीवार खड़ी कर दी थी। वरना मैं तुमको बहुत ही चाहता था, और अब भी चाहता हूं। विश्वास रखो कि इन तमाम मित्रों को मैंने भगा दिया है। मैं अब इस परिणाम पर पहुंच गया हूं कि तुम से अधिक और कोई मेरा मित्र नहीं हो सकता। तुमने सदा मुझे सुधारने की कोशिश की, पग पग पर कदम कदम पर। मेरी गहरी से गहरी गलती को भी तुमने पकड़ लिया। मैं कितना ही छिप कर बुरा काम करने की कोशिश करता,

उतनी ही गहराई में जाकर तुमने मेरी गलती को बताया। अन्धेरे में एकान्त में दीवार के पीछे, यहां तक के कि मैंने मन में भी पाप की कल्पना की हो तो तुमने ही बाहर लाकर रख दिया। तुमने जब भी आवश्यकता पड़ी तभी मुझे औषध देने की कोशिश की। लेकिन शोक ! कि ज्यों ही मैं उसको पीने के लिये जाता तो मेरे मित्र मुझ को यह कर कि देखो ! यह विष है, यह तुम्हारे शत्रुओं का दिया हुआ है, कहते थे और मैं भी उस पवित्र औषध को कड़वी देख कर उन्हीं बातों को सच्ची समझता था।

तुम होशियार भी हो, तुम मेरे सुधार के तमाम रास्ते जानते हो। तुम यह जानते हो कि मैं तुम्हारी बातों को नहीं मानता इसी लिये तुम मेरे दुर्गुणों को दूसरों के सामने रखते हो और उन के द्वारा कहलाने की कोशिश करते हो। तुम्हारा उद्देश्य मेरा सुधार है लेकिन शोक कि तुम्हारी इस वस्तु को मैंने चोरी या चुगली समझा।

तुमने मुझे सुधारने में न दिन को दिन समझा और न रात को रात ! सोने, उठते, बैठते, हंसते, खेलते हर समय मेरे सुधार की चिन्ता की है। तुमने हंसते हुए भी, जो कि मनुष्य की प्रसन्नता की अवस्था है, मेरे सुधार को नहीं भूले उस में भी कुछ न कुछ मेरे दोषों को निकालने का प्रयत्न किया लेकिन मैंने उस को मजाक समझा, वास्तव में मेरे दोषों को निकालने में ही तुम्हारी खुशी है तुम्हारी प्रसन्नता है। प्रत्येक समय प्रत्येक अवस्था में तुम मेरे सुधार में इतने मस्त रहे कि तुम अपने आपको भी भूल गए। अपने बुराईयों को निकालने की तरफ़ भी तुमने ध्यान न रखा।

दूसरे शब्दों में तुमने मेरे सुधार के लिए अपने सुधार की कुर्बानी की तुमने यही कहा कि रहने दो, अपनी बुराइयां तो किसी समय भी निकाली जा सकती है,लेकिन मैं नहीं देखना चाहता कि शंकरदेव के अन्दर बुराई रहे। तुम बहुत बडे उदार हो, तुम धन्य हो तुम जहां देखो मैं यही सुनता हूं कि मेरे सुधार के बारे में चर्चा करते रहते हो। कई बार तुम अपने स्वप्न में भी मुझे सुधारते हुए दिखते हो। जब मैं फिर भी नहीं सुधरता तो तुम क्रोध में आते हो, तड़प उठते हो, और उसे तड़प और चिन्ता से कभी कभी तुम्हारा हृदय भी तड़पने लगता है। उस को मेरे मित्र मुझ से आकर कहते हैं कि देखो तुमको याद कर के स्वप्न में तुम्हारा शत्रु डर रहा है लेकिन मैं जानता हूं कि यह सब मेरे सुधार का चिन्ता से हो रहा है।

धन्य है तुम्हारा जीवन ! किसी ने तुम्हारे बारे में ठीक ही कहा है। उस के शब्दों में मेरी मां हो मां से बड़ कर हो। मां;जब बच्चा टट्टी करता है तो उल्टे हाथ से वह भी दूर से सांस रोककर उठाती है लेकिन तुम तो मां, से भी कोसों दूर आगे बढ गए।

तुम तो मेरी गन्दी से गन्दी बुराइयों को अपने मुंह से निकालते हो। घृणा से नहीं, प्रेम से, बडे चाव से और उत्साह के साथ। और इस कार्य में कभी थकते नहीं।

मेरे समस्त मित्रो ? तुम मेरे महा शत्रु हो, दूर रहो ! और मेरे समस्त शत्रुओं ! तुम मेरे समीप आजाओ। मैं तुम से प्रेम करता हूं। और शब्द कोष के लिखने वालो तुम इन मित्र और शत्रु के अर्थ को बदल डालो। मित्र को शत्रु के अर्थों में लिखो और शत्रु को मित्र के अर्थों में लिखो। ओ! धर्म ग्रन्थ और आचार शास्त्र के लेखको! तुम भी अपने उद्देश को बदल लो, लोगों को यही उपदेश दो कि मित्र को दूर रखो और शत्रु को समीप बुलाओ ?

"परतन्त्रता वरदान है
और
स्वतन्त्रता अभिशाप"

मुझे उन दिनों का स्मरण है जब कि भारतवर्ष परतन्त्रता की बेड़ियों से जकड़ा हुआ था और मैं उस समय किन भावनाओं से ओतप्रोत था उन दिनों में हमेशा त्याग, बलिदान और देश-भक्ति की भावनाओं से घिरा हुआ रहता था। मैं यही सोचता था कि कब मुझे बलिदान का अवसर मिले और मैं अपने आपको देशके लिए बलि चढ़ाऊँ, मैं अपने प्राणों को लुटाऊं, जंजीरों में जकड़ जाऊं। अपनी सम्पत्ति को राष्ट्रके लिए बलि चढ़ाऊं। कब और किस अत्याचार के नियम का विरोध करूं। कब पकडा जाऊं कब कोडे पडें और फिर भी मैं भारत माता की जय बोलूं और फिर भी असंतृप्त रहूं। कहां जाऊं, किधर भागूं, क्या करूं, कौनसा ऐसा सत्कार्य रहगया है जिसको मैंने अब तक नहीं किया। किसको सहायता दूं और क्या सहाता दूं। मातृत्व भावना तो हृदय मे सदा उमड़ती थी। प्रत्येक भारतवासी मेरे सगे भाई से भी निकट था उसके पसीने के ऊपर मैंने खून बहाया था जिस किसी भी भारतवासी के ऊपर अत्याचार होता तो वह मुसीबत उसकी नहीं बल्कि मेरी अपनी है समझ कर वहीं उपस्थित होता और उसका मुकाबला करता। मानो मेरा हृदय इतना विशाल होगया था कि उसमें सारा भारतवर्ष समा गया था।

रिश्वतखोरी? यह तो मैंने सुना भी नहीं था। हिंसा तो जानता ही नहीं था। अत्याचार मेरा अधर्म था, द्वेष मुझ से भागता था।

मैं जब स्कूल और पाठशाला में पढता था तो उस में गाये जानेवाले राष्ट्रीय गान से मुझ में रोंगटें खडे हो जाते थे। धन मेरे लिए तिनके के समान था। कब मेरा घर लुट जाय यही मेरी अभिलाषा थी। मुझे नेता बनने से भी अपने नेता के पीछे चलने में और सैनिक बनने में आनन्द आता था। गरीबों की सेवा के लिए मैं हमेशा तड़पता था।

त्याग, तपस्या, बलिदान, निस्वार्थता, मातृत्व भावना, ये तमाम गुण जो एक आदर्श नागरिक में होने चाहिए वे सब मुझ में थे और शक्ति के अनुसार उनको कार्यरूप में भी लाता था।

लेकिन अब दिन बदल गये हैं समय में फेर आचुका है स्वतंत्रता मिल चुकी है। इस स्वतंत्रता के साथ२ मेरे अन्दर भी महान् परिवर्तन आचुका है। मेरे जो तमाम सद्गुण और सद्-भावना जो स्वतन्त्रता से पूर्व थे, परतन्त्रता के साथ साथ वह भी चले गये। मेरा उद्देश्य अब त्याग नहीं संग्रह हो गया है। मैं दिन-रात यही सोचता हूं कि जल्दी से जल्दी और अधिक से अधिक किस प्रकार संग्रह करूँ। मैं पहले यह देखना चाहता था कि कब मेरा घर लुटता है और अब मैं यह सोचता हूं कि किसका घर लूटूं।

पहले सोचता था कि घर किस प्रकार खाली हो जाये और अब सोचता हूं कि किस प्रकार भर लूं। पहले मैं बलिदान होना चाहता था और अब मैं दिन रात इस चिन्ता में रहता हूं कि किसे बलिदान करूं। मेरा वह राष्ट्र प्रेम और मेरा वह विशाल हृदय जिसके अन्दर सारा भारत वर्ष समा जाता था अब उस में केवल मेरी

पत्नी और मेरे बच्चे ही समा सकते हैं। मेरी हृदय सीमाएं जो पहिले कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक थीं अब घर की चार दीवारी उसकी सीमाएं बन चुकी हैं। अब किसी भाई के ऊपर कोई अत्याचार होता है तो वह खून नहीं दौड़ता जो पहिले दौड़ता था। कोई गरीब किसी संकट में फंसा है तो यह सोचता हूं वह पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार अपना फल भोग रहा होगा। जिस में विघ्न डालना मेरा काम नहीं है। मैं तो अपना हिसाब लगाता हूं यदि मुझे भी कुछ प्राप्ति होती है तो मैं किसी गरीब की भी सेवा करूँ। अब मैं किसी मरते हुए मनुष्य के मुख में पानी डालने के लिए इस आशा से जाता हूं कि शायद मरनेवाला अगर मर जाय तो उसके हाथ की अंगूठी ही शायद प्राप्त हो जाए। अगर किसी पड़ोसी का घर भी जल रहा है तो मैं इस उद्देश्य से जाता हूं कि मैं यह जानूं कि घर किस प्रकार जला करते हैं और उससे अपने घर को किस प्रकार बचाऊं और साथ ही साथ हाथ भी सेक करके आऊं। राष्ट्रीय गान अब भी गाये जाते हैं लेकिन अब वह उमंगों को पैदा नहीं करते जो पहिले पैदा किया करते थे। झूठ, धोखेबाजी रिश्वतखोरी ही मेरे दोस्त बन गए हैं अब मेरा परम लक्ष्य यही है कि थोडे से थोडे समय के अन्दर और थोडे से थोडे कष्ट उठाकर, बडे से बड़ा धनी और बडे से बड़ा नेता बनूं और बिना किसी तपस्या के सब लोग मेरे सामने झुकें।

अब मैं बहुत गम्भीरता के साथ सोच रहा हूं कि यह काया पलट मुझ में कैसे हो गया। यह ठीक है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति से देश में कुछ भौतिक परिवर्तन आया है। आर्थिक दृष्टि से किसी

अंश में समता आती दिखाई दे रही है। पंचवर्षीय योजना से कुछ नाले, तालाब आदि बन गए हैं कुछ कारखाने भी खुल गए है, खुल रहे हैं। कुछ दवाखाने भी खुल गए हैं, लेकिन मुझे यह समझ में नहीं आया कि मनुष्य की वास्तविक उन्नति क्या इसी से मांपी जाती है ? क्या हम यह कह सकते हैं कि किसी के पास खाने, पहिनने को भर पेट है तो वह उन्नत हो चुका। यह तालाब, नहरें और यह कारखाने तो उन्नति के साधन हैं साध्य नहीं। किसी भी राष्ट्र और वहां के निवासियों की उन्नति का माप दण्ड, वहां के निवासियों की भावनाओं और विचारों के ऊपर आश्रित हैं जिसको उन्होंने ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया है इस दृष्टि से मैं कहूंगा कि, महापुरुषों ने जो कहा है कि "स्वतन्त्रता वरदान है और परतन्त्रता अभिशाप" यह गलत है ! और मैं इस परिणाम पर पहुंच चुका हूं कि मैं गला फाड़कर यह कहूं कि "परतन्त्रता वरदान और स्वतन्त्रता अभिशाप।"



भोगी तपस्वी है और तपस्वी महा भोगी

तपस्वी लोग कहते हैं कि हमको सुख से क्या मतलब ? सुख तो भोगी लोगों की वस्तु है। हम तो तपस्या करते हैं। संसार का सारा संकट हम झेलते हैं कम से कम सुख लेते हैं और वह भी मिला तो लेते हैं नहीं तो वह भी नहीं। सुख तो हमारा उद्धेश्य है ही नहीं। ब्रह्मचर्य की तपस्या हमने धारण की और संसार के एक महान सुख को हमने त्याग दिया। स्वाद को भी हमने ठोकर मार दी। स्वाद भी कोई छोटा सुख नहीं। सौंदर्य, सुगन्ध और सुस्पर्श समस्त सुखों को हमने ठोकर मारदी और उनसे सम्बन्ध तोड़ा। वस्त्र त्याग कर नंगे रहते हैं, कांटों पर चलते हैं। गर्मी और सर्दी सबको झेलते हैं और सांसारिक भोगी लोग तो अपने सांसारिक सुखों के अन्दर सदा लिप्त रहते हैं। उनको चारों तरफ से सुख ही सुख मिलता है। न उनको गर्मी सताती है, न सर्दी। नरम नरम गद्दों के ऊपर पड़े गरम कपड़ों को पहिने बिजली के पंखों के नीचे सुन्दर सुन्दर स्त्रियों के कर कमलों से हास्य विनोद के साथ गरम गरम चायकी प्याली को पीते हुए इस प्रकार असीम आनन्द का उपयोग करते हैं। तपस्वी बेचारे को तो यह सब कहां? वह तो जंगलों में भटका फिरता है। गरम कपडों के स्थान पर गरम लू, नरम गद्दियों के स्थान पर कांटों की शैया और कंकड पत्थरों के सिवाय और कुछ नहीं। सुन्दर स्त्रियों के मृदु त्वचा के साथ कोमल स्पर्श के स्थान पर वृक्षों की कठोर छाल का स्पर्श, भोगियों के षड्रसपूर्ण स्वादिष्ट आहार, कभी कडवा तो कभी मीठा,

कभी चरपरा तो कभी मसालेदार के स्थान पर कन्द मूलों का फीका और नीरस भोजन, नगरों के सुन्दर गाने, नृत्य और सिनेमा नाटक के स्थान पर नीरस एकांत वास में जहां कोई हल चल नहीं न उत्थान न पतन। इस प्रकार लोगों का कहना है कि तपस्वीजन तपस्या करते हैं और उनको सुख से कोई मतलब नहीं।

लेकिन यह मेरा पूछना है कि क्या यह वास्तव में सच है कि भोगी ही सारे सुख को अनुभव करता है और बेचारे तपस्वी को कुछ बचता ही नहीं। मैं अगर सच्ची बात कहूं तो मुझे तो यह तपस्वी ही सब से बडे भोगी मालूम पड़ते हैं। इन भोगियों को सुख मिलता ही कहां है ? उदाहरण के लिए वेश्यागामी भोगी को लीजिए। उसके सुख का समय कितना है, अधिक से अधिक एक मिनट। वैज्ञानिक डाक्टरों का कहना है कि बलवान मनुष्य दो मिनट तक आनन्द ले सकता है। पहले तो हमारा भोगी इतना बलवान होता ही नहीं, क्यों कि उसका अधिक तर जीवन तपस्या के अन्दर बीत चुका होता है यदि उनको बलवान भी मान लिया जाय तो भी वह दो मिनट से अधिक तो सुखका उपयोग नहीं कर सकता। अरबों मिनट की इस तपस्वी जिन्दगी में इन दो मिनटों का क्या स्थान ; और गजब तो यह है कि योगी के लिए उन २ मिनटों के तुरन्त पश्चात ही तपस्या की घडी प्रारंभ हो हो जाती है। पहिले कमजोरी, फिर थकान, दूसरे दिन, दिन में भी बेचारे को आलस्य की तपस्या घन्टों तक करनी पड़ती है, फिर कुछ हो गया तो गर्मी, सुजाक सिफलिस आदि महान् तपस्या महान् व्रतों को लेनेके लिए कमर कस कर खडा रहता है तब वह

महान् तपस्या के व्रतों को सहन करता है। कड़वी दवा पीता है, बीबी बच्चों से दूर रहता है। तपस्वी लोगों को तो कन्द मूल फल आदि खाने को मिलते हैं लेकिन इस को उन दिनों वह भी नहीं मिलता, उपवास करना पड़ता है। अपने बन्धुओं और दूसरे लोगों की बदनामी को धैर्य के साथ झेलता है। वहां पर तो तपस्वी को तो केवल कांटे, पत्थर, गर्मी और सर्दी के कष्टों को ही सहना पड़ता है जो कि शरीर को होता है लेकिन यहां पर तो यह योगी " बदनामी के कष्टों को जो कि आत्मा को होता है बड़े आनन्द के साथ झेलता है। और इस भोगी की कुर्बानी तपस्वी से भी अधिक है। यह हमरा भोगी एक-मिनट के सुख के लिए वर्षों के कष्ट को मोल लेता है। जब कि तपस्वी कुछ घन्टों के लिए कष्ट उठाकर जीवन भर के लिए आनन्द पाता है। इस तपस्वी को एक आध बार सुख की इच्छा थोड़ी देरके लिए उठती होगी, उस को दबाने के लिए कुछ मिनटों को आवश्यकता होती है। एक बार दब जाने के बाद फिर वह इच्छा समाप्त होती ही है। फिर उसके बाद उठती ही नहीं। फिर तपस्या ही कहां? फिर आनन्द ही आनन्द, उसका प्रारम्भ हो जाता है। यह बेचारा वेश्यागामी भोगी को तो एक बार जब मजा लग जाता है तो अस्पताल से लौट कर स्वस्थ होने के बाद फिर भी जाता है, लेकिन वह इस बार कुछ कमजोर रहता है इस लिए पहिले जितना सुख तो नहीं ले सकता। डाक्टरों का कहना ठीक है कि वह इस बार एक मिनट से अधिक सुख नहीं ले सकेगा। यदि वह इस बार बीमार पड़ता है तो अस्पताल में उसकी तपस्या

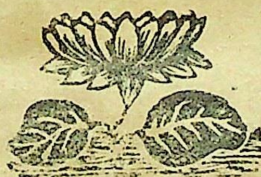
का समय पहिली बार से भी ज्यादा बढ़ जाता है।

पहिले उसने अस्पताल में छः मास की तपस्या की हो तो इस इस बार साल भर करता है इस प्रकार बेचारे इस भोगी ने इस बार कम सुख लिया और अधिक तपस्या ली इसकी तपस्या का तो कोई अन्त ही नहीं। इसके विपरीत तपस्वी कहलाने वाले तो एक आध मिनट की तपस्या करते हैं जबतक के, इन्द्रियां न रुके और इन्द्रियों का स्वभाव यह है कि जब वह एक बार दब जाती है तो दबती ही चली जाती है और उसके पश्चात् तपस्वी आनन्द ही आनन्द लूटता चला जाता है। फिर ये तपस्वी लोग यह कहते हैं कि हम तपस्या करते हैं। आनन्द के मजें उड़ायें और फिर तपस्वी भी कहलाए और यह भोगी लोग बेचारे संसार के समस्त दुःख संकट और रोग झेलने के पश्चात् भी भोगी कहलाए यह निराला ही न्याय है। इसी प्रकार हमारे पेटू भोगी के लिए भी लीजिए। पेट भरने के पश्चात् हमारा यह भोगी अधिक से अधिक ८-१० निवालों का और आनन्द लूट लेता होगा। वह भी आनन्द अधिक से अधिक ५-१० मिनटों के लिए लूट लेता होगा, लेकिन ज्यों ही वह समय समाप्त हो जाता है त्योंही तपस्या का समय प्रारम्भ हो जाता है। पेट भारी की तपस्या, आलस्य, अपचन की तपस्या, पेट दर्द, सिर दर्द की तपस्या नींद का न आना दूसरे समय की भूख को भी वह कुर्बान कर देता है इसकी तपस्या का कोई अन्त ही नहीं, लेकिन तपस्वी कहलाने वाले लोग पेट भरने से २-४ निवाले पहिले ही जिव्हा को रोक कर ३-४ मिनट के लिए तपस्या करते हैं फिर उसके बाद उनका आनन्द ही आनन्द प्रारम्भ

हो जाता है। चुस्ती का आनन्द, पचजाने का आनन्द, सोने का आनन्द, और फिर पचजाने के बाद खाने का आनन्द। आनन्द ही आनन्द।

मुझे तो समझ मे नहीं आता कि इस तपस्वी को तपस्वी क्यों कह कर ऊंचा चढाया जाता है' और इस भोगी को जो जीवन भर तपस्या करता है क्यों नीचे गिराया जाता है। असल में वह भोगी भोगी नहीं, बल्कि महा तपस्वी है और यह तपस्वी महा भोगी है।

ओ! शब्दकोष के लिखने वालो! तुम क्यों चुप हो, तुम तो हरएक शब्द की परीक्षा करते हो और तब उसका ठीक ठीक अर्थ बताते हो। तुम मेरे साथ इस सचाई को प्रकट करने में क्यों नहीं एक होते। आज मैं घोषित करता हूं कि दुनिया के लोगों! इस तपस्वी को तनस्वी मत कहो भोगी कहो और इस भोगी को महा तपस्वी कहो।



" मेरे पेट में सांप घुस गया है "

मैं कहां भागूं

एक भयंकर सर्प मेरे पेट में प्रविष्ट होगया है अब मैं कहां भागूं कैसे बचूं, किधर दौड़ूं वह तो मेरे पेट के अन्दर है जहां जहां मैं भागता जाता हूं वहां वहां वह मेरे साथ ही आ रहा है। पता नहीं कैसे घुसा, कब घुसा, कहाँ घुसा, कुछ ज्ञान नहीं। वह एक अजीब सर्प है। वह सर्प कभी सोता नहीं। दिनको, न रात को। हर समय मुझे देखता रहता है। जब कभी मैं अपनी इच्छा के अनुसार कोई काम करने के लिए चलता हूं तो झट से वह अपना फन निकाल मारने के लिए दौड़ता है और मुझे अपनी इच्छा के अनुसार काम करने से रोकता है। मैंने समस्त प्रकार के उस से बचने के प्रयत्न किए लेकिन शोक! कि ज्यों ही मैं आंख खोलता हूं त्यों ही मेरे साथ उठता है और भुरस, बोल कर उठता है और इस प्रकार इस सर्प ने मुझे समस्त सांसारिक सुखों से वंचित कर रखा है।

पहले मैं बड़ा प्रसन्न था, बड़े सुख में था, जो मर्जी कर सकता था। सुन्दर कहानियों को पढ़ता था, सुन्दर दृश्यों को देखता था, जब मैं अपने नगर के सार्वजनिक वाटिका में सायंकाल ६ बजे खड़ा होता था तो मैं मानो सौन्दर्य की नदी मे नाहता था। वह सुन्दर सुन्दर मुख, रंग बिरंगे वह यौवन के हाव भाव, चाल चलन, उनका हिलना डुलना, उनकी बात चीत, प्रत्येक वस्तु एक एक करोड़ रुपये का आनन्द देती थी। दिल करता था कि एक एक को चूम लूं। छाती से लगा लूं। इतनी जोर से लगा लूं कि छाती के अन्दर रख लूं। समझ नहीं आता था कि खा जाऊं या सीधे ही निगल

जाऊं। ओह! विधाता ने क्या सौन्दर्य की अनंत राशि की सृष्टि की। एक एक चेहरा आंखों को संतृप्त देता था। एक एक का मटकना, किसी एक अंग का ही संचालन सारे दिन भर की थकान को समाप्त करने के लिए पर्याप्त था। आखिर इस में पाप ही कौनसा था। भगवान की बनाई हुई सौन्दर्य की राशि और उसी भगवान् की कृति हम। भगवान के लोगों ने ही भगवान की वस्तु का उपयोग किया। गैर कौन थे। पता नहीं यह कौन दाल भात में मूसलचन्द की तरह यह क्रूर सर्प अपने फन को लिए हुए मेरे ऊपर दौड़ता आता है।

उसके पश्चात् मैं समीप के विश्रामगृह में जाकर कुछ स्वादिष्ठ आहार ग्रहण करता आखिर स्वाद भी तो भगवान ने ही बनाया है। यदि स्वाद ग्रहण न करना हो तो भगवान ने स्वाद को बनाया ही क्यों? जब मैं रात को चित्रपट को देखने जाता हूं तब भी यह स्पर्श मुझे नहीं छोड़ता। आखिर आधुनिक विज्ञान का चित्रपट भी तो भगवान की दी हुई बुद्धि का ही फल है उस को क्यों न मैं चखूं? यदि सोने में थोड़ी देरी भी होती है तो भी कोई चिन्ता नहीं, सोया तो देर तक जासकता है, लेकिन चित्र पट का देखना तो रात को ही होता है।

विवाह जहां सन्तानोत्पत्ति के लिए है वहां आनन्द की भी तो सामग्री है, यदि आनन्द ग्रहण न करना था तो भगवान ने उसमें आनन्द ही क्यों रखा। ज्योंही आनन्द की तरफ़ आंख उठाता हूं तो यह सर्प भयंकर फन लिए हुए मेरी तरफ़ दौड़ता है।

जब मैं किसी का काम करता हूं तो उसके फल में दूसरे लोग मुझे धन देते हैं तो उसको ग्रहण क्यों न करूं? आखिर मेरा वेतन भी तो कितना है? कहां उसके अन्दर गुजारा हो सकता है? लेकिन यह सर्प छि: "रि-श्व-त" कह कर भुस्स बोल कर मेरे ऊपर आता है। मैंने इस सर्प से पूछा कि तुम्हारा मेरे पेट में रहने का उद्देश्य क्या है? तो उसने कहा कि तुम्हारे "पापों को खाना और तुम्हारे पेट को साफ रखना" यह मेरा उद्देश्य है। जिस प्रकार मछली तालाब में करती है।

मेरे दुनिया के दोस्तो! मुझे बचाओ पता नहीं कि यह कैसा सर्प है मुझे तुम्हारी सत्संगति से रोक रहा है। मैं अब तक तुम्हारे साथ समस्त सांसारिक सुखों का उपयोग करता था और अब भी चाहता हूं कि तुम्हारे साथ रहूं लेकिन यह भयंकर सर्प मुझे वंचित रख रहा है मैं इससे कैसे बचूं। तुमने मुझे अभी तक सरकारी कर्मचारियों से, अपने बड़ों से बचना तो सिखाया है, कानून से किस प्रकार वकील के द्वारा बच सकते हैं यह भी सिखाया है। भयंकर रातों में भी वडे-बडे बलवानों से पिस्तौल और बन्दूक आदि रख कर किस प्रकार बच सकते हैं यह भी सिखाया है लेकिन मुझे तुमने इस भयंकर सर्प से जो मेरे पेट में बैठा हुआ है रग रग में समाया हुआ हृदय के अन्तस्तल पर भी जिसका अधिकार हो चुका है। किस प्रकार बचना चाहिए यह नहीं सिखाया। मैं तुम्हारे साथ रहना चाहता हूं। मैं तुम्हारा साथी हूं क्या तुम मुझे बचावोगे नहीं? क्या मैं तुम्हारा भाई नहीं? दोस्त नहीं?

साईं बाबा बहादुर थे ?

मेरे मित्र और बन्धु श्री. अम्बादासराव एम. एल. ए. जो कि हैदराबाद विधान सभा के सदस्य हैं, एक अनोखे स्वाभाव के अनोखे व्यक्ति हैं। उनकी जहां प्रत्येक करतूत और चेष्टायें निराली हैं वहां उनके विचार भी विशिष्ट स्थान रखते हैं। वह मुझे अपने विचारों की तरफ़ जितना खींचनेका प्रयत्न करते हैं उतना ही मैं अपने विचारों पर दृढ़तर होता जाता हूं। उनके विचारों के साथ मेरे विचारों के संघर्ष ने मेरा रास्ता और भी साफ़ कर दिया है। मेरे विचारों की स्पष्टता, दृढ़ता और मेरे इस प्रकार के विचार 'सरणी' और जीवन शैली में उनकी विचार धारा बहुत ही प्रेरणा देती रही है। यद्यपि हम दोनों में आकाश और पाताल का हमेशा से अन्तर रहा है।

श्री. दास जी मेरे कमरे में अचानक आ ही गए। मैं नहीं चाहता था कि वह, मेरे अन्तरीय कमरे में प्रविष्ट हो, अस्तु ! प्रविष्ट होते ही उन्होंने चारों तरफ कमरे के अन्दर देखना प्रारम्भ किया। उन्हों-ने देखा कि कुछ साधु संतों की मूर्तियां और चित्र भी रखे हैं। पहिले हंसे, फिर बडे व्यंग के साथ बोलने लगे कि तुम एक बड़े अजीब राजनैतिक लीडर हो राजनीति में काम करते २ तुम्हारे घर में चित्र साईं बाबा, नारदबाबा, माणिक्यम्मा, समाधिस्थ शिव, गौत्तमबुद्ध, ईसा, मसीह आदियों का रखा हुआ है। श्री कृष्ण का चित्र तो रखा है लेकिन वह भी अर्जुन को साथ

लेकर रथ पर बैठे युद्धस्थल को जाते हुए नहीं, बल्कि योगी राज श्रीकृष्ण का। क्या कोई तुमको वीरों और बहादुरों का फोटो मिला ही नहीं।

मैंने पूछा और किसका होना चाहिए।

वह कहने लगे कि राणाप्रताप, शिवाजी, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, ऐसे बहादुरों में से किसी का चित्र तुमको मिला ही नहीं।

मैंने पूछा कि यह जो चित्र दीख रहे, क्या यह लोग बहादुर नहीं है?

वह कहने लगे कि यह लोग तो ढीले हैं इनका काम तो सिर्फ राम, राम जपना है।

* * * *

हां यह मैं मान लेता हूँ कि यह लोग "राम राम जपना" के साथ "पराया माल अपना" नहीं कहते।

* * * *

लेकिन यह बहादुर तो नहीं हैं।

* * * *

मैंने पूछा अच्छा तो बहादुर किसे कहते हैं।

वह बोले– बहादुर वह हैं जो दुनियां को झुकायें।

मैंने कहा कि साई बाबा, बुद्ध भगवान और शिवजी—
इनके सामने तो दुनिया झुकती है।

* * * *

मिस्टर, अम्बादास इस प्रकार के उत्तर की कल्पना नहीं की थी। वह कुछ झेंपे और अपनी झेंप को मिटाने की कोशिश करते हुए बोलने लगे वाह वाह! यें वे बहादुर तो नहीं हैं जिन्होंने दुनिया पर हुकूमत चलाई, जिन्होंने अपना सिक्का बिठाया है।

मैंने कहा हां? इन्होंने भी हुकूमत चलाई है और उन लोगों से बढ़कर शान के साथ जो अपने आपको राजनैतिक कहते हैं और जो राजनैतिक नेता हैं। और उन लोगों से भी बढकर जबरदस्त सिक्का बिठाया जो लोग राजनैतिक पद पर पहुंचकर बिठाना चाहते हैं। इन्होंने वहांपर छाप लगाई है जहां से मिट नहीं सकती और जहांतक इन बहादुरों की छाप है पहिले तो लगी ही नहीं थी, जो भी लगी थी वह रंग था, सो भी उड़ गया।

मि० दास कहने लगे के यह तो आपकी बातें ही बातें हैं, "वीर भोग्या वसुन्धरा"। पृथ्वी बहादुरों से भोगी जाती है। बहादुर आते हैं हुकूमत करते हैं और चले जाते हैं और ऐसे ढीले साधु सन्त तो जिनके हाथ से कुछ नहीं होता अपने कमरे में बैठकर राम नाम रटते रहते हैं।

मैंने कहा जिनको आप बहादुर कहते हैं यदि वह बहादुर है तो वह बहादुरों के बाबा हैं। शिवाजी, राणा प्रताप आदि बहादुर तो शत्रु के पास मेहनत करके सेना की तैयारी के साथ स्वयं गए। और उनके सिरों को स्वयं झुकाए। जब कि इन साधु सन्त बहादुरों के पास शत्रु लोग परिश्रम करके तैयारी के साथ स्वयं आए और बिना कहे स्वयं सिर झुकाए। उन राणाप्रताप, भगतसिंह

आदि बहादुरों के शत्रु तो उनके मरने के बाद फिर सिर उठाए लेकिन इन साई बाबा आदि बहादुरों के शत्रु तो इनके मरने के पश्चात् इनके चरणों मे सिर पटक कर रोए, गुणगान किए जय: कारे लगाए, मूर्ति बनाए मन्दिरों में बिठा कर पूजने लगे। असल में इन लोगों ने शत्रुओं की आत्मा को झुकाया था, जब कि आपके बहादुरों ने शत्रु के शरीर को झुकाया और समझने लगे कि आत्मा को झुकाया।

मि० दास ने मेरी बातको काटते हुए कहा—अजी! आत्मा वात्मा की क्या बातें लगाते? जिसके होने न होने के बारे में अभी कोई प्रमाण ही नहीं मिला। काम ऐसा करो जो बिजली के समान दुनिया में चमक जायें। बैरागी बनकर इस राम भजन से कुछ नहीं होता।

मैंने कहा—तुम ठीक कहते हो बिजली की तरह चमकने का यदि काम करे तो अच्छा हो है। लेकिन कोई सूर्य की तरह चमकने का काम करता है तो यह बिजली से तो कुछ कम नहीं।

मि० दास मेरे इस छोटे से सम्वाद से किस प्रकार प्रभावित हो सकते? मेरे जैसों का पाला न जाने उनके जीवन में कितनों के साथ पड़ा होगा। जिनमें से मैं भी एक था। किसी की सची बातको भी मानलेना उनके स्वभाव के विपरीत था। इस लिए नहीं कि यह बात उनके विचारों के प्रतिकूल है बल्कि इस लिए कि वह बात उन के मुंह से नहीं निकली थी।

इतने में पुत्र 'कपिल' जिसको इस संसार में आए ५ मास ही

हुए थे, पैर पटक कर रोते हुए मेरे ध्यान को आकर्षित करते हुए मानो कहा—पिता जी! "नचा शुश्रु षुवे वाच्यम्" ॥गीता १८ अ०॥ जो आपकी बातों को सुनने की इच्छा नहीं रखता, आपको कभी नहीं कहना चाहिए।

मि० दास—स्वभाव के अनुसार बच्चे की तरफ घूरते हुए मानों इसका बदला फिर कभी निकालेंगे चले गए। लेकिन वह बार बार यही सोचते थे कि अब इसको बरबाद करके छोडेंगे। साधु बनाकर रहेंगे, एक तो हमने इसकी भलाई के लिए कहीं और हमको ही ये बेवकूफ बनाते हैं? देखेंगे ये कैसे बहादुर बनकर दिखायेंगे?



छूत छात को मिटाने के लिए

हरिजन सेवक संघ नहीं

ब्राह्मण सेवक संघ की स्थापना करनी चाहिए

लोग तो कहते हैं कि छूत छात को देश से मिटाओ और हरिजनों का उद्धार करो। लेकिन मुझे समझ नहीं आता कि छूत छात हरिजनों के अन्दर है हीं कहां ? छूत छात तो अपने उच्च कहने वाले ब्राह्मणादि लोगों के अन्दर है। हरिजन तो छूत छात करते ही नहीं। उनके हृदय तो स्वच्छ हैं। निर्मल हैं। छूत छात को मानने वाले और करने वाले ब्राह्मणादि हैं इस लिए यह कह सकते हैं कि यह गन्दगी ब्राह्मणादि जातियों के दिलों में है। इस लिए ब्राह्मणादि जातियों का उद्धार करना चाहिए। हरिजनों के दिलों के अन्दर कोई गन्दगी नहीं फिर उनके उद्धार का कोई प्रश्न ही नहीं। गिरे हुए तो वह लोग हैं जिन के दिलों में छूत छात की भावना है। मुझे मालूम नही महात्मा गान्धी ने अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ की स्थापना की। उनको वह चाहिए था कि यह अखिल भारतीय ब्राह्मण सेवक संघ की स्थापना करते। और गिरे हुए ब्राह्मणादियों को उठाने की कोशिश करते। और यही कारण है कि देश से छूत छात के मिटने में इतनी देरी होरही है। गान्धी ने सिर में दर्द था तो पैर मे दवाई लगाई। यह तो उस बुढिया की बात हुई जिस की सूई घर में खोगई हो और वह रास्ते के दीपक के नीचे ढूंढने लगी।

हरिजनों ! तुम तो बडे अजीब हो। कुछ दिनों से तुम अपने आप को दलित कहने लग गए। मुझे समझ नहीं आता कि तुम दलित कैसे हो ? तुम समझते होंगे कि हम गरीबो में पले हुए हैं। राजनैतिक अधिकारों से वंचित थे। समाज में हमारा कोई मान भी नहीं है। इस लिए शायद तुम अपने को दलित कहते हो लेकिन यह तो कोई दलितता नहीं है। दूसरे हरिजन तो तुम से भी बडे दलित हैं। वह तो स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष, अन्याय, और अत्याचार आदि अनैतिक गुणों से दबे हुए हैं, पिसे हुए हैं। वह यह समझ कर कि हरिजन भी यदि मन्दिर में देवता का दर्शन करलें वे तो मुक्ति पाजायेंगे। आप को जाने ही नहीं देते। यह ईर्ष्या नहीं तो और क्या है ? तुम भी पाठशालाओं में जाकर हरिजनेतर की तरह विद्या पालेंगे तो विद्वान बन जाओगे तो इस लिए तुम को विद्याका अधिकार ही नहीं दिया। यह उन के हृदय संकीर्णता और पेट की जलन नहीं तो और क्या है ? यदि वह छूत छात न माने और तुम को दूर न रखे तो उनको ऊंचाई कहां रहेगी तुम भी उन के समान हो जावोगे। यह द्वेष नहीं तो और क्या है ? तुम भी उन के बराबर बैठ कर भोजन करने लगे तो तुम में और उन में भेद ही क्या रहा ? राजनैतिक अधिकार तुमको भी अगर दूसरों के समान दिये और शुद्र भी राजसिंहासन पर बैठने लगा तो.........कहां बैठेगा ? तुम्हारे पास बराबर धन और सम्पत्ति रही तो तुम भी उन के समान कपडे पहनोगे और शान करोगे। ये स्वार्थ नहीं तो और क्या है ? इस प्रकार यह लोग तो निर्धनता से दबे हुए हैं, छोटे मोटे राजनैतिक अधिकारों से भी वंचित हो सकता है लेकिन

यह सब बाहरी वस्तुयें हैं। यह लोग तो समस्त दुर्गुणों से दबे हैं, जो वास्तव में दलित हैं।

इस लिए समस्त हरिजनों! दलित शब्द को छोडो और उन लोगों को कहो जो वास्तव में दलित हैं। जिससे वह अपनी दलितता को शीघ्र से शीघ्र हटा सकें। मैं उन वास्तविक दलितों से यह कहूंगा कि यह लोग अपना भी एक दलित जाति संघ बनायें जिसका उद्देश्य यह ही कि स्थान स्थान पर इन वास्तविक दलितों को बुलाकर अपनी दलितता कि दूर करने के विषय में गम्भीरता पूर्वक सोंचे। प्रस्ताव पास करें। और प्रचार करें। समाचार पत्रों के सम्पाद कों तुम भी इन वास्तविक दलितों को दलित कह कर लिखा करो क्यों कि तुम तो समाज के सच्चे मार्ग दर्शक हो।



आन्ध्र देशकी दो उल्टी खोपड़ियां

वैसे तो परमात्मा की इस अनन्त सृष्टि में पता नहीं कितने अजीब अजीब खोपड़ियां छिपी हुई हैं, लेकिन इनमें से केवल दो मेरी दृष्टि में आयी हैं. और वह पाठकों की दृष्टि में लाना चाहता हूँ — १. यानागुन्दी का माणिक्यम्मा, २. देवल्ले की चिन्नम्मा। कुछ लोग इनको योगीरत्न तो कहते हैं। लेकिन हमारी दृष्टि में इनकी खोपड़ियां उल्टी हैं। इनकी विचारधारा अजीब है। आज कल सारी जनता शहर की तरफ भाग रही है तो यह जंगल को पसंद करते हैं। लोग रंग बिरंगे कपड़े पहनते हैं तो इनको नंगे रहने में आनन्द आता है। हमारे घर बनाने के लिए मैदान की आवश्यकता है तो उनके लिए ऊबड़ खाबड़ पहाड़ ही घर हैं। हमारा शरीर आहार से बनता है तो उनका शरीर आहार के बिना ही। हम तमाम सुखों को चाहते हैं तो उनको समस्त सुखों को लात मारने में आनन्द आता है। यही नहीं, इनके नैतिक नियम हमारे नैतिक नियमों से बिल्कुल उल्टे हैं। इनका कहना है कि सत्य भी बोल सकते हैं और असत्य भी, हिंसा और अहिंसा, न्याय अन्याय सब बराबर हैं। हम को जरा से अपमान पर क्रोध आता है तो इनको महान अपमान पर भी कुछ नहीं होता। यह किन भूतों से बने हैं इसका कुछ पता नहीं चलता। ऐसा प्रतीत होता है कि अगर यह सम्प्रदाय दुनिया में चल पड़े और बीमारी फैल जाय तो यह दुनिया को ले डूबेगी। सब लोग बातें करके उपदेश देते हैं

तो ये कहते हैं कि हम बिना बात किये उपदेश देते हैं। सुनते हैं कि ये मौन रहकर बड़ी जोर से चिल्लाती है। मौन भी और चिल्लाना भी, इनकी भाषा यही जानें। इनके सिद्धान्त यही पहचाने। लेकिन इतनी बात सच है कि ये हमारी और आप जैसी खोपड़ियों की बनी नहीं है। अब हम बाल योगिनी माणिक्यम्मा को लेते हैं।

माणिक्यम्मा :—

यह तपस्विनी बाल्यकाल से ब्रह्मचारिणी अपने जीवन के २१ वें साल में से गुजर रही हैं नौजवान है, स्वस्थ हैं। यह हठयोग मिश्रित भक्ति योग के पथिक प्रतीत होती है। हैदराबाद नगर के यादगीर के रास्ते पर ८० मील की दूरी पर गुलबर्गा जिले के सेडम तालुके अन्तर्गत एक छोटे से ग्राम यानगुन्दी के समीप एक पहाडी पर रहती है। इनके जीवन के विषय में यह सुना जाता है कि इन्होंने कई वर्ष केवल पेडों पर रहकर बिताये। वहीं सोना, वहीं रहना। इनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह किसी भी प्रकार का आहार ग्रहण नहीं करतीं। न खाती हैं, न पीती हैं और न मलमूत्र का विसर्जन। बिना आहार के जीवन चलाते हुए इनको आठ साल गुजर चुके हैं। ये सब उन लोगों का कहना है कि जो उनके समीप सालों से रहते हैं और जो बचपन से इनको पहिचानते हैं। बिना आहार पर रहने की परीक्षा तो नहीं हुई लेकिन इसका प्रमाण नहीं मिलता कि वे खाती है।

मैं अपने सरकारी कार्य से यादगीर से लौट रहा था तो मुझे इस देवी की कीर्ति श्रवण का सौभाग्य मिला। मेरे अन्दर कुतुहलता

समाई और देवी के दर्शन को पहुंचा। योगशास्त्र के अनुसार निर्जल और निराहार जीवन व्यतीत करना कोई असंभव तो नहीं है क्योंकि गीता ने भी स्पष्ट कहा है कि—

"अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति:" अर्थात् कुछ लोग आहार को भी नियंत्रण में लेकर प्राणों के अन्दर होम करते हैं। इससे स्पष्ट है कि आहार को नियंत्रण में लाया जा सकता है, लेकिन फिर भी इस अपूर्व सिद्धि पर आज के भौतिक युग में कुछ लोग विश्वास कर भी सकते है। और नहीं भी सकते। यह तो उन लोगों के विश्वास के ऊपर आश्रित है जो उन्होंने प्राचीन ऋषि मुनियों और उनके ग्रन्थों के अध्ययन से अपने अन्दर जिस मात्रा में उत्पन्न किया है। वास्तव में संसार के अन्दर शुद्ध विश्वास और शुद्ध प्रत्यक्ष प्रमाण कहीं नहीं मिलता। विश्वास मे कुछ न कुछ अंश प्रत्यक्ष प्रमाण का रहता है। और प्रत्यक्ष प्रमाण में कुछ न कुछ मात्रा विश्वास की रहती है। इस प्रकार विश्वास और प्रत्यक्ष प्रमाण दोनों का सम्मिश्रण ही संसार में मिलता है। कोई यह कहे कि मैं केवल प्रत्यक्ष को ही मानता हूं यह गलत है। इसमें विश्वास की भी आवश्यकता है। और यही कारण है कि भूतवादी वैज्ञानिकों को आत्मा का अस्तित्व समझ नहीं आता। मनुष्य उनके लिए पंच भूतों को पुंज मात्र है इससे अधिक कुछ नहीं। यदि वह प्रत्यक्ष के साथ अनुमान और विश्वास का भी सम्मिश्रण करते तो उनको आत्मा का दर्शन अवश्य होता।

माणिक्यम्मा चाहे वह खाती हो या न खाती हो, पीती हो, या

न पीती हो, लेकिन जहां तक मैं उनके संसर्ग में आया हूं क्योंकि बीसों बार उनके दर्शन का मौका मिला है, उससे और मैं ने उन से जो बातचीत की, उनका रहन सहन, उनकी दिनचर्या उनका आचार, सब से अधिक उनकी विचारधारा और उनके सिद्धान्त आदि। मैं ने जो देखा उन तमाम बातों से मैं कह सकता हूं कि अपने उद्देश्य में कम से कम ढोंगी नहीं है, दिखावा नहीं करती। संसार को मनवाने का उनका लक्ष्य भी नहीं है इसीलिए इतनी दूर जंगल में पहाड़ के ऊपर बैठी है।

एक बार हम उन से वार्तालाप कर रहे थे तो हमारे में से एक जिज्ञासु ने पूछा माईजी, हमको शीघ्र मुक्ति का मार्ग बताइये। तो उन्होंने कहा कि जो ऋषि मुनियों ने साधन बताये हैं उनका अनुकरण करो। इस पर जिज्ञासुने कहा कि ये बड़ा लम्बा रास्ता है इस से कोई छोटा रास्ता बताइये। तो उन्होंने कहा कि इस से छोटा रास्ता तो त्याग का हो सकता है। इस में आप को सर्वस्व को त्यागकर समस्त अभिलाषाओं को होमकर अनन्त शक्ति को आत्म-समर्पण करना पड़ेगा इस पर जिज्ञासु ने पूछा? यह भी अत्यंत कठोर और लम्बा मार्ग प्रतीत होता है। योगिनीने थोड़ी देर रुक कर, हंस मुख होकर, यह उत्तर दिया, इस से छोटा रास्ता तो एक ही रास्ता हो सकता है वह यह कि आप अपना गला काटलें। तत्काल मुक्त हो जाएंगे। इस पर तमाम जिज्ञासु हंसने लगे। हमने यह पूछा कि आप आहार क्यों नहीं ग्रहण करती? उन्होंने कहा कि मुझे उसकी आवश्यकता का अनुभव ही नहीं होता।

हमने कहा-हम को क्या विश्वास कि आप नहीं खाती?

उन्होने कहा—मैंने तो कोई आप से विश्वास करने की प्रार्थना नहीं की थी। मैंने कोई अभिमान भी नही किया कि मैं बिना आहार के रहती हूं। अगर मुझे भूख लगे तो मैं खा भी लूंगी मेरे ऊपर किसी का बन्धन नहीं।

मैंने पूछा— क्या आप को कभी भूख लगती भी है?
उन्होने उत्तर दिया हां! मुझे कभी कभी उसकी अनुभूति होती है। तब अनुभूति होती है जब मेरे योगाभ्यास के अन्दर कुछ चंचलता आ जाती है फिर उस के लिए मुझे एकाग्रता और समाधी के लिए प्रयत्न करना पड़ता है तब यह भूख मिट जाती है।

उनका भाव ऐसा प्रतीत होता था कि शायद वह निरन्तर कई दिनों तक अपने अभ्यास को छोड दें तो उनको भौतिक भूख और प्यास सताने लगे, और यही कारण है कि वह २४ घंटे में १–२ घंटे ही अपनी समाधी से बाहर रहती है अन्यथा २२ घंटे अपने छोटे से कमरे में ही बन्द रहती है।

एक बार उनका हैदराबाद आना हुवा था। उस समय उन्होंने मेरे घर पर भी दर्शन दिये थे। जब वह बैठी हुई थी तो चित्रकार चित्र लेने के लिए उन के सामने खडा हुवा, झट से उन्होंने कहा कि चित्र नहीं लेना चाहिए, हमको संसार में रह कर भी, नही रहे जैसा रहना चाहिए" इतने में चित्रकार अपना काम समाप्त करके चला भी गया था, लेकिन हमको यह समझ में नहीं आता कि नहीं रहे, जैसे भी कैसे रहा जासकता है। ये तो कोई उलटी खोपडी के ही वचन हो सकते हैं।

हमने पूछा— आपने क्या क्या पुस्तकें पढ़ी ?

उन्होंने कहा— हमें पुस्तकें पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं।

हमने पूछा—कहीं दुनिया में बिना पुस्तक के भी ज्ञान प्राप्त हो सकता है ?

उन्होंने कहा—हां ! ज्ञान लेनेवाला चाहिए देनेवाला तो ऊपर बैठा है।

जब वह हैदराबाद आई थी तो २-३ दिन के बाद ही पंडित जवाहरलाल नेहरू भी हैदराबाद आनेवाले थे तो हमने पूछा कि यदि आप पंडितजी के आगमन तक यहीं रह रुकें और पंडित जी आपके दर्शन करें तो आपकी ख्याति बढेगी।

उन्होंने उत्तर दिया—मैं ख्याति लेकर क्या करूंगी ? मुझे तो उनके दर्शन की कोई अभिलाषा नहीं है। यदि वह मेरे दर्शन करना चाहे तो जहां वह हजार मील पार करके दिल्ली से हैदराबाद आ सकते हैं, तो क्या वह हैदराबाद से हमारे स्थान पर नहीं आ सकते? जो कि केवल कुछ मीलों पर है।

उस समय मेरा यह दिल कर रहा था कि यदि मैं होता तो झट से स्वीकार कर लेता और हैदराबाद के समस्त समाचार पत्रों में पंड़ित नेहरू के साथ दर्शन का समाचार प्रकाशित करता।

जब यह शाहमंज़िल में आई थी तब तमाम मंत्रिगणों को दर्शन करने का अवसर प्राप्त हुआ था। उस समय तमाम मन्त्रियों ने यह पूछा कि आप कुछ उपदेश दीजिए। तो उन्होंने कहा कि मैं तो कुछ पढी लिखी नहीं हूं आप लोग बडे बडे विद्वान हैं। कुछ

आग्रह के पश्चात् उन्होंने कहा कि "यह राज्य व्यवस्था ठीक नहीं। मंत्रिगण परस्पर एक दूसरे की सुनते नहीं। एक नेता का राज्य होना चाहिए। एक गांव की लडकी, बिना पढी लिखी जिस ने समाचार पत्रों का तो नाम भी नहीं सुना, राज्य व्यवस्था के बारे में वह भी मंत्रियों के परस्पर मतभेदों के विषय में किस प्रकार जानती है यह तो एक आश्चर्यजनक बात थी।

एकबार यह योगिनी तीन मास के लिए समाधी में गई। समाधी के दरवाजे सिमिट से चिन दिए गए थे। खिड़कियां भी बन्द थी। जहां न खाना था न पानी था, न रोशनी थी न हवा केवल छोटी-सी दरार छोड़ दी थी, जिस के द्वारा भक्तों के पत्रों के उत्तर दिया जाता था। उन गर्मी के दिनों में तीन मास तक बन्द कमरे में कैसे रही और क्यों रही? सब लोग गर्मियों में खुली हवा चाहते हैं तो यह बन्द कमरे में रहती हैं, यह तो उल्टी खोपड़ी का ही काम है।

भक्तों ने पूछा जब आप बाहर निकलोगी तो क्या दरवाजा तोड़देना पडेगा?

उन्होंने कहा—आप लोगों की भक्ति की शक्ति से यह दरवाजा स्वयं टूट जाएगा।" पवित्र शिवरात्री के दिन उस आश्चर्यजनक घटना को देखने के लिए हजारों नर नारी एकट्ठे हुए थे। ठीक ४ बजे उस सीमिट की दीवार के पत्थर एक एक करके गिरने लगे। लोग हैरान होकर क्या कह सकते थे? वह केवल भजन ही करने लगे! उस समय मैंने भी स्वयं आंखों से देखा। हमारे सरकारी कर्मचारी भी वहां उपस्थित थे।

यह घटना हुई अवश्य, यह तो सच है। इसके अन्दर दो बातें हो सकती हैं। या तो उस समय हमारी आंखों पर पट्टी ही बन्ध गई होगी। या वास्तव में दीवार टूटकर गिरगई होगी। दोनों में से कोई न कोई एक बात अवश्य हुई होगी लेकिन हजारों आदमियों के आंखों पर पट्टी बन्धजाना असंभव है। यही हो सकता है कि कुछ चमत्कार अवश्य हुवा होगा। असल में चमत्कार को ही नमस्कार होता है जब हजारों आदमी इसकी तथ्यता को स्वीकार करते हैं तो मान ही लेना पडता है। हमको उस समय उस तथ्य को और उसके कारणों को समझने की कोशिश करना चाहिए। हम उसकी व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं—

हमारे शरीर के समस्त अवयव हमारे वश में हैं। हम पैरों से चाहते हैं कि वह दौडे, वह दौड पडते हैं। हम हाथों से चाहते हैं कि फलाने को मारे तो मारने लगते हैं। यह हमारी इच्छा शक्ति के आधीन है। लेकिन कुछ अंग हमारे आधीन नहीं भी हो सकते हैं। जैसे कई बार हम आंखों से चाहते हैं कि फलानी सुन्दरता की तरफ़ मत देखो लेकिन आंखें उधर चली जाती ई। जब हम जनता में व्याख्यान देने के लिए खडे होते हैं तो, हम नहीं चाहते कि हमारा दिल धडके लेकिन फिर भी धडकने लगता है। सोते समय हमारी बहुत सारी इन्द्रियों पर हमारा वश नहीं रहता। लेकिन जिन की आत्मा बलवान होती है। उनकी आत्मा के एक बार कह देने पर, न आंखें देखती है, न दिल धडक सकता है। शरीर के सारे अवयवों या इन्द्रियों का वश में रहना उस मनुष्य की आत्मा की शक्ति के ऊपर निर्भर है। यह तो शरीर के हद तक हुवा। इस

युक्ति को जरा आगे बढायें तो हमको यह सीमिंट की दीवार किस प्रकार इस योगिनी के वश में हुई और किस प्रकार टूटी यह समझ में आ सकता है। यदि किसी मनुष्य के शरीर के साथ रहने वाले अवयव और इन्द्रिय भी अपने आत्मा की निर्बलता के कारण उसके आधीन नहीं भी रहती है तो यह भी सम्भव है कि यदि कोई मनुष्य आत्मिक शक्ति को प्राप्त करले तो अपने शरीर में रहने वाले समस्त अवयवों और इन्द्रियों के साथ शरीर से बाहर रहने वाली वस्तुओं पर भी अधिकार प्राप्त कर सकती है।

इस प्रकार हम आत्मिक शक्ति को अभ्यास के द्वारा बढ़ाकर बाह्य वस्तुओं पर अधिकार प्राप्त करले, यह असम्भव नहीं है।

अब प्रश्न यह है कि क्या मनुष्य बिना आहार और जल के बिना भी रह सकता है?

इस का बुद्धि पूर्वक उत्तर देना बहुत ही कठिन कार्य है। जहां हम इस योगिनी के सम्पर्क में आये हैं वहांतक हमारे सामने कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं मिला जिसने इसको खाते पीते हुए देखा हो। इसका आधुनिक दृष्टि से वैज्ञानिक उत्तर देना मुश्किल है। खाती पीती तो नहीं लेकिन वायु सेवन तो करती ही है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार वायु में हाईड्रोजन रहता है। हाइड्रोजन पानी का सम्मिश्रण है। यह होसकता है कि इस योगिनी ने अपने अन्दर यह शक्ति पैदा करली हो कि वह वायु में रहने वाले जल को खींच लेती हो। और इस प्रकार जल की आवश्यकता को पूर्ण करती हो। जहां तक अन्न का सम्बन्ध है भारतीय दर्शनकारों के अनुसार इस की भी

व्याख्या की जासकती है। भारतीय दर्शन यह कहते हैं कि समस्त सृष्टि और हमारा शरीर भी पंच भूतों से बना है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश-लेकिन यह पांचों भूत अपनी शुद्ध मात्रा में कहीं नहीं मिलते। यदि मिलते हैं तो प्रलय की अवस्था में ही मिलते हैं। सृष्टि की अवस्था में पांचों भूत मिले जुले रहते हैं। पृथ्वी के अन्दर पृथ्वी की मात्रा मुख्य रहती है लेकिन जल, अग्नि, वायु, आकाश, की मात्रा कम और गौणरूप या सूक्ष्म रूप में रहते हैं।

इसी प्रकार जल, अग्नि, वायु, आदि में भी अपने अन्य भूतों का सम्मिश्रण रहता है। हमारा आहार पंच भूतों से ही बना होता है। जब यह योगिनी वायु को सेवन करती है और उपरोक्त भारतीय दर्शन शास्त्र के अनुसार वायु में विद्यमान उन पंच भूतों को जो शरीर के लिए आवश्यक हैं, खींच लेना कोई कठिन कार्य नहीं है।

कुछ लोगों का यह कहना है कि यह छिप छिप कर के आहार ग्रहण करती है लेकिन इसके अन्दर कुछ सचाई प्रतीत नही होती क्यों कि उन्होने इस बात की सिद्धि के लिए कोई प्रमाण नही दिये। दूसरी बात योगिनी अपने उद्धेश्य और विचारों में गम्भीर और पहुंची हुई मालूम होती है। इतने गम्भीर और इतने उच्च विचार और इतना बड़ा योगाभ्यास और ईश्वर भक्ति, इन के होते हुए यदि यह कहें कि झूठ भी बोलती है, जनता को धोखा भी देती है और ढोंग भी करतो है, ठीक प्रतीत नही होता। क्यों कि सचाई और

दिखावा ये दोनों साथ साथ नहीं चलसकते। अगर यह स्वीकार भी करलें कि वह आठ साल से निरन्तर छिप करके खाती पीती भी है, अपने तमाम भक्तों से जो रात दिन उनके साथ रहते हैं उन से भी छिप कर खाती है और इसी ढंग से गुप्त रीति से खाने पीने का प्रबन्ध किया है तो यह बिना आहार और जल के रहने से भी हजार गुने बडे आश्चर्य की वस्तु होगी। ढोंग भी किसी उद्देश्य या अभिलाषा से किया जाता है। जिसने भारत के प्रधान मंत्री के दर्शन के लिए भी अनिच्छा प्रकट की हो, जिस को पहिनने ओढ़ने का शौक नहीं और जो जंगल और पहाडों पर पडी हो, उसको ढोंग की क्या आवश्यकता? ढोंग तो शहरों की गलियों और सडकों पर किये जाते हैं जहां उसका कुछ आदर हो। जंगल और एकान्त में या सांसारिक इच्छाओं के अभाव में, नहीं किया जासकता।

माणिक्यम्मा वैज्ञानिक जगत के लिए एक रहस्य की गुत्थी है, समस्या है, एक सिरदर्द है। अध्यात्मिक जगत से आंख मींच-कर केवल भौतिक जगत पर विश्वास रख कर, अन्धा धुन्ध दौडने वाले आधुनिक वैज्ञानिकों के लिए यह योगिनी चौरास्ता के उस खम्बे के समान है जो यह बतला रहा है कि तुम्हारा रास्ता उधर नहीं, इधर है। मुड़ जावो। लोग कहते हैं कि यह उल्टीखोपडी है। लेकिन मालूम नहीं कि यह उल्टीखोपडी है या हम। दोनों में से कोई हो सकते हैं यह आवश्यक नहीं कि वही हो।

चिन्नम्मा :—

रेपल्ले, आन्ध्रप्रान्त में तेनाली के निकट एक तालुका है जहां इस योगिनी के भौतिक शरीर का निवास स्थान है। यहां पर उनके शरीर को लगभग ७० वर्ष बीत चुकते हैं। इनके ३-४ बच्चे हैं, इनका पति है। सारा कुटुम्ब है। यह सबके साथ खाती, पीती, चलती फिरती, हँसती हुई भी उन तमाम वस्तुओं से ऊपर है। इनके विषय में यह कहा जाता है कि यह "जीवन मुक्ता" हैं। अर्थात् जीते हुए भी मोक्ष की अवस्था में है। हमारी कुतूहलता इसलिए बढ़ी कि संसार में जीते हुए भी मोक्ष को प्राप्त करना किस प्रकार सम्भव है? यह तो बहुत ही अच्छी चीज़ है। दोनों हाथों में लड्डू। इहलोक भी परलोक भी। जब मैं तैयार हुआ तो श्रीमती शंकरदेव ने भी कहा कि मुझे दर्शन से क्यों वंचित रखते हैं? इतने में ४॥ महीने का कपिल पैर मारते हुए चिल्लाया कि मुझे भी भूल नहीं जाना। हम तीनों चल पड़े हमको पहुंचने में लगभग ११ घंटे लगे। ऊपर दोपहरी के सूरज की अग्नि, नीचे पृथ्वी की अग्नि और पेटकी जठराग्नि। इन तीनों अग्नियों को योगिनी के दर्शन की अग्नि ने मात कर दिया और हम ठीक दिन के २ बजे पहुंचे। ज्यों ही हम आश्रम पहुंचे उस वृद्धा योगिनी ने उठकर हमारा स्वागत किया जैसे मानों वह हमको वर्षों से जानती और पहचानती थी, परिचय न होने के कारण हम कुछ संकोच कर रहे थे लेकिन हमारे इस संकोच को उन्होंने ताड़ लिया और कहा कि हम और आप तो एक ही हैं। बीच में कुछ अलग हो गए थे, लेकिन

अब फिर मिल गए हैं। हम उसी प्रकार आश्चर्य कर रहे हैं जिस प्रकार कि अलग हुए दो बन्धु बहुत दिनों के पश्चात् किसी मेले में अचानक मिलते हैं। बहुत देर में ज्ञात हुआ कि वह वृद्धा योगिनी इन साधारण वाक्यों में वह आत्मा की एकता की तरफ़ निर्देश कर रही थी।

कपिल ने उनके बिस्तर पर लेटे हुए मलमूत्र का विसर्जन कर दिया, मानो उनके प्रेम का प्रसाद दिया। मां बहुत झेंप गई और वह इतना कुपित थी भगवान इस बच्चे को छोटा हुवा तो क्या हुआ, घर पर ही छोड कर आते तो ठीक था, लेकिन इतने में ही मनोविज्ञान को जानने वाली उस वृद्धा ने कहा– देवी तुम्हारे कपिल को धन्यवाद है जिसने हमको इतनी सेवा का बकाया चुकाने का अवसर दिया।

फिर उन्होंने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति जबतक ऋण में है तभी तक वह सेवा करता है और ऋण उतर जाने के पश्चात् सेवा समाप्त हो जाती है। पति पत्नी का सम्बन्ध, माता पिता और पुत्र का तथा बन्धुओं का सम्बन्ध, ये सारे सम्बन्ध सेवा के लिए हुआ करते हैं। सेवा के पश्चात् सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। और जब तक ऋण रहेगा, तबतक सम्बन्ध अवश्य रहेगा।

हम बहुत देर से पहुंचने के कारण भूखे थे। उन्होंने कहा कि आप चाहें तो भोजन अपना पृथक बना ले सकते हैं, आप चाहें तो हमारे आश्रम में भी भोजन पा सकते हैं जिसका आपको जो भी मूल्य है देना पडता है। हमने कहा आपके नियत मूल्य देने से भी

अधिक एक अच्छी राशि दान की देंगे क्योंकि ऐसे पवित्र स्थान पर मूल्य देकर खाना हमारी आत्मा को अच्छा प्रतीत नहीं होता। उन्होंने कहा नहीं ! नहीं ! यह दोनों कार्य पाप हैं और हमारे सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। हमारा आपको बिना मूल्य के खिलाना आप को अपने ऋण में बान्ध लेना है। और आपका मूल्य से अधिक दान का देना हमको ऋण मे बान्ध लेना है, इसलिए ये दोनों कार्य पाप हैं। हम उनके सिद्धान्तो के प्रतिकूल नहीं जा सके और हम साडे चार आदमी होते हुए भी ड्राइवर, सेवक, मैं और श्रीमती शंकरदेव और छोटा कपिल, दो दिन के लिए साढे तीन रुपये दिए।

योगिनी को पति के जीवित रहते हुए भी सिरमुंडे और बिलकुल नग्न दिगम्बर बैठी हुई देख कर हमने पूछा कि आपने सिर क्यों मुडवाया है।

उन्होंने उत्तर दिया– एक बार आत्माने कहा कि बाल शृंगार की वस्तु है। तुमको क्या आवश्यकता है मैंने मूंड दिए।

मैंने पूछा– आपका यह दिगम्बर रूप सामाजिक रीति रिवाजों के विपरीत है।

उन्होंने कहा– आत्मा ने कहा कि जब तुम आते समय भी नंगे और जाते समय भी नंगे जाते हो तो फिर बीच में कपडे पहिनने की क्या आवश्यकता है ?

मैंने कहा–आखिर लज्जा भी तो समाज में एक वस्तु है।

उन्होंने कहा– काम, क्रोध आदि की तरह लज्जा भी जीतने की वस्तु है।

मैंने कहा- फिर आप मल मूत्र विसर्जन के समय एकान्त में क्यों जाती हैं ?

उन्होंने कहा—हृदय जब शुद्ध होता है तो मल मूत्र कहीं भी कर सकते हैं। जैसे गाय आदि पशु और तुम्हारा कपिल शुद्ध अन्त-करण होने से सब के सामने मल मूत्र विसर्जन कर सकता है। उसी प्रकार मुझे भी करने में कोई संकोच नहीं।

मैंने कपिल को सामने करते हुए कहा फिर तो हमारा यह कपिल आपका मित्र और साथी हैं।

उन्होंने कहा— मित्र तो होसकता है लेकिन साथी नहीं। हम दोनों उस स्टेशन पर खडे हैं, जहां पर कि रेलगाडी अभी अभी पहुंची हो और जहां पर उस रेलगाडी से यात्रा से लौटने वाले भी खडे हो और यात्रा को जाने वाले भी खडे हों। मैं यात्रा से लौट रही हूं जब कि कपिल अभी यात्रा प्रारम्भ कर रहा है।

मैंने पूछा— आपने किन किन ग्रन्थों का अध्ययन किया है?

उन्होंने कहा-- ग्रंथों के अध्ययन से क्या होता है? जिस प्रकार मनुष्य की तीन अवस्थाएं होती हैं जागृत स्वप्न, और सुषुप्ति उसी प्रकार जागृत अवस्था में भी तीन अवस्थाएं होती हैं, जागृत स्वप्न और सुषुप्ति। जो लोग पढ़ते हैं और उसके अनुसार करते हैं वे जागृत अवस्था में हैं। जो लोग पढ़कर समझते तो हैं लेकिन उसके अनुसार करते नहीं है। वे लोग स्वप्नावस्था में हैं। जो लोग पुस्तकें पढ़कर भी न उसके अनुसार करते हैं वे लोग स्वप्नावस्था में हैं। फिर पुस्तकों के अध्ययन से लाभ क्या?

योगिनी चिन्नम्मा के सिद्धान्त :—

यह योगिनी केवल फूटी तेलगू भाषा में बोलती है ! इनके पारि भाषिक शब्द (Technical terms) बडे अजीब हैं और ग्रामीण है। वह बिलकुल निरक्षर और अपढ़ होने से अपने विचारों को समग्र रूप में नही रख सकती | वह बिखरे हुए विचारों को बिखरे रूप में ही प्रस्तुत करती है ! उनके बिखरे विचारों को एक सूत्र में पिरो कर, उसको एक रूप देना आसान काम नही, और वह भी हम जैसों के लिए जो तेलगू नहीं जानते। फिर भी थोडे से समय के अन्दर मैं ने उन के विचारों को एक रूप देने का प्रयत्न किया है। उनके सिद्धान्तों पर गम्भीरता पर विचार करना हम जैसों के लिए बिलकुल एक उलटी खोपड़ी की बात है। उनके अनुसार हम चार विभागों में विभक्त हैं। जीवात्मा, अन्तरात्मा, और परमात्मा, जीवात्मा। वह है जो बाह्य संसार के जैसे भी प्रभाव आते हैं उसके अनुसार कार्य करती है, यहां विवेक नहीं होता। अन्तरात्मा वह है जो भलाई और बुराई का विवेक नहीं होता। अन्तरात्मा वह है जो भलाई और बुराई का विवेक तो रखती है लेकिन उसके अनुसार कार्य नहीं करती। आत्मा वह है जो सदसद् विवेक अर्थात् भलाई और बुराई के विवेक साथ बुराई को छोडकर भले काम ही करता है। वहाँ बुरे काम का कोई नामो निशान भी नहीं रहता है। परमात्मा वह है जहां पर न बुरे काम है न भले काम निष्क्रय और निश्चल।

चिनम्मा का कहना है कि हमारा जीवन ऋण के कारण है। हमारे ऊपर अनेक प्रकार के ऋण चढे हुए हैं। पति पत्नी का

सम्बन्ध, हमारे ऋण हैं ही जिन को हमे चुकाना है साथ ही चलना फिरना, व्याख्यान देना, पढना आदि भी ऋण है जिन को चुकाना है। जहां जहां जितने व्याख्यान देने हैं जितना पढना है जितनी गालियां सुननी है वह सब हम को करना पडेगा। उसके पश्चात् ऋण समाप्त हो जाते हैं। उनका कहना है कि हम ऋण चुकाते भी रहते हैं और ऋण लेते भी रहते हैं। जितने हमारे सत् कार्य हैं उनसे हम ऋण चुकाते हैं। संपूर्ण ऋणों को चुका देना ही मुक्ति है। जीवात्मा और अन्तरात्मा ऋण को बढाते हैं और आत्मा ऋण को उतारता है। जब आत्माका दर्शन होता है तो जीवात्मा उसी प्रकार भस्म होजाती जिस प्रकार अग्नि में लकड़ी। और जब तक लकड़ी जलती रहती है तभी तक अग्नि की भी सत्ता रहती है। जब लकड़ी जलकर भस्म हो जाती है तो उसके साथ अग्नि भी राख में मिल जाती है। इसी प्रकार आत्मा के दर्शन के पश्चात् जीवात्मा और अन्तरात्मा भस्म हो गया तो उस के साथ आत्मा भी परमात्मा में लीन हो जाता हैं। यहां पर संक्षेप में पाठकों को समझ ने के लिए यह बतला देते हैं कि जीवात्मा और अन्तरात्मा का विभाग, अर्थ हीन है, मनो वैज्ञानिक नहीं है, ऐसा नहीं समझना चाहिए। जीवात्मा पाशविक जीवन का स्तर है। अन्तरात्मा मानवीय, आत्मा दैवीय और परमात्मा का तो अन्तिम है ही।

हम लोग बाह्य संसार के अनुसार काम करते हैं। सामाजिक रीति रिवाज, सरकारी तथा नैतिक नियम और बाह्य प्राकृतिक वस्तुओं का भी हमारे ऊपर प्रभाव पडता है। जैसे खाना आ जाये तो

हम खाते हैं लेकिन मल मूत्र आदि नहीं खाते। समाज में हम शर्म करते हैं। कभीकम खाते हैं, कमोसर्दी गर्मी का अनुभव करते है और अतिथियों का सत्कार करते हैं। असत्य, चोरी आदि करने से डरते हैं आदि। लेकिन यह योगिनी तो बिलकुल उल्टी खोपडी की बनी है वह कहती हैं " कि मैं इन बाह्य वस्तुओं की जिम्मेदार नहीं, मैं आत्मा के आदेश के अनुसार काम करती हूं। आत्मा ने यदि यह कहा कि तुम्हारे सामने जो रखा है वही खाना, तो वही खाऊंगी। मुझे यह देखने का अधिकार नहीं कि मैं यह देखूं कि खाने योग्य चीज है या नहीं। इसी प्रकार पाप पुण्य सत्यासत्य, हिंसा अहिंसा आदि। वह कहती है कि पाप पुण्य दोनों मेरे लिये समान है। मैं असत्य और अन्याय भी कर सकती हूँ बशर्तें कि आत्मा से इस प्रकार के आदेश आयें।

" मैंने पूछा-अन्य वस्तुओं में तो आप किसी प्रकार करें लेकिन नैतिक नियमों में तो दो मत नहीं हो सकते। सत्य तो सत्य ही रहेगा और असत्य असत्य, सत्य, आपका कहना सत्य और पुण्य समान हैं यह बुद्धिमान को जंचता नहीं।"

उन्होने कहा तुम ठीक कहते हो। बुद्धिमान मनुष्य को कभी नहीं जंच सकता। लेकिन मैं तो बुद्धिमती नहीं हूं मुझे सोचने का अधि-कार नहीं है। मैं एक बार बिक चुकी हूं। जिस प्रकार किसी बालिका का एक बार अज्ञात और अपरिचित लड़के के साथ विवाह होने के बाद वह लडकी लडके की होजाती है। उसी प्रकार मैं भी उस आत्मा की होचुकी हूं। मुझे सोचने का अधिकार नहीं।

मैंने पूछा— क्या आप असत्य भी बोल सकती है? उन्होंने कहा मैं सत्यासत्य में भेद नहीं कर सकती क्या बोलूं? उनके अनुसार सत्यासत्य, हिंसा अहिंसा पाप पुण्य ये तमाम भेद भाव बुद्धि के भेद हैं, जो प्रकृति जन्य है जड है। असल में तुम्हारे यह समस्त नैतिक नियम सरकारी कर्मचारी के समान है। जब तक चोरी होती है तभी तक पुलिस की आवश्यकता होती है। जब चोरी ही नही, तब पुलिस की क्या आवश्यकता। आत्मा के दर्शन के पश्चात् आपके नैतिक नियम समाप्त हो जायेंगे। मैंने पूछा— सत्य अहिंसा आदि तो रहते हैं। उन्होंने कहा— यह भी नहीं रहते। सत्य और अहिंसा की सत्ता तभी तक है जब तक असत्य हिंसा आदि हैं। पुण्य की सत्ता तभी तक है जब तक पाप है। जब पाप, हिंसा, और असत्य आदि लोट जाते हैं तो उनके भाई अहिंसा, सत्य, और पुण्य आदि भी नहीं रहते।

इस योगिनी के जीवन में ऐसी बहुत सारी घटनाएं आई हैं जब कि उन्होंने आत्मा के आदेशानुसार ही काम किया है एक दिन जब वह अपने घर में अपनी लडकी को घी परोस रही थी, आत्मा ने कहा कि क्या तुम्हारी एक ही लडकी संसार में है? उनके हाथ रुक गये। फिर भी वह परोसने को आई उनके हाथ मुड गए। आत्मा के आदेशानुसार वह १२ साल तक मौन रहीं। आत्मा ने कहा— तुम्हारी इच्छाएं तुम्हारे मासिक धर्म के समान हैं। जब तक स्त्री मासिक धर्म में रहती है वह अशुद्ध रहती और किसी को छू नहीं सकती और इसी प्रकार जब तक तुम्हारे में इच्छायें हैं तब तक

किसी से न बोलो और छूओ। उन्होंने सालों तक किसी को नहीं छुआ।

वैसे तो इनके जीवन की घटनायें लिखते चले जायें तो वह एक पृथक् पुस्तक बन जायगी। और इसलिए भी लिखना ठीक नहीं कि कहीं पढने वालों की भी खोपड़ियां ऐसी ही उल्टी न हो जायें। जब उनको समप्रेम का आदेश हुवा था तो कई बार यह देखा गया कि बिल्ली चूहे को मुख में पकड तो लाती थी, लेकिन इनके सामने खा नहीं सकती, छोडकर चले जाना पडता था। जब अहिंसा का आदेश इनके ऊपर आया था तो तालाब में जाती थी तो मछलियां इनके पैरों को प्रेम से लिपट जाती थी। मछुये ठोकरी में भरकर जो मछलियां ले जा रहे थे इनको देखकर छोड़ दिये। उनको यह भी मालूम नहीं पडा कि उन्होंने क्यों छोडा?

जब पति के अन्दर पितृ-भावना का आदेश हुआ तो पति पिता के समान दीखने लगा और जब पति पत्नि समझ कर इनके पास आता तो हाथ पैर कांप जाते थे और वह गिरजाता था। शिशु कपिल योगिनी के गूढ रहस्य को खोलकर बताने में बहुत ही सहायक बना। अचानक बच्चा ज़ोर से रोने लगा किसी के समझाने पर नहीं समझ सका। योगिनी ने भी स्वयं उठा लिया और खिलाया लेकिन नहीं समझा। इतने में मां के उठाते ही चुप हो गया। इतने में योगिनी ने कहा— संसार की हज़ार वस्तु सामने रहने दो आत्मा आत्मा को पहिचान लेती हैं।

हमको आश्रम में आये दो दिन बीत चुके थे और हमको

जाना था। देर हो रही थी। चलते चलते मैं ने सोचा कि आखिरी प्रश्न पूछ ही लूं।

मैं ने पूछा—मुक्ति किस प्रकार पाई जा सकती है?

उसी समय श्रीमती शंकरदेव की गोद में कपिल को नीन्द की झपकियां आ रही थी। योगिनी ने उसी तरफ़ इशारा करते हुए मुझ से पूछा कि बच्चे कपिल ने इस नींद को पाने के लिए क्या प्रयत्न किया। मैंने कहा— 'कुछ नहीं।' उसने कहा— ठीक इसी प्रकार मुक्ति पाई नहीं जाती, परन्तु मुक्ति हो जाती है। उसके लिए प्रयत्न की आवश्यकता नहीं।

मैं ने फिर पूछा— यदि मुक्ति स्वयं ही आती है तो उसमें कितनी देर लगती है?

इतने में कपिल ने आंखें खोली और बन्द कर लिये। योगिनी ने पूछा-कपिल के इस आंख खुलने के और बन्द होने में कितना देर लगी होगी। मैं ने कहा—एक क्षण। योगिनी ने कहा- बस इतनी ही देर मुक्ति की प्राप्ति में लगता है।

फिर उन्होने कहा—तुम जब प्रातःकाल ५ बजे तक सोये रहते हो तो स्वप्न देखते रहते हो और तुम्हारी आंखें अचानक ही खुल जाती है इस स्वप्नावस्था मे से जागृत अवस्था में आने में कितने मास या साल लगते हैं। मैंने कहा-कुछ नहीं एक क्षण।

उन्होने पूछा—क्या जिस स्वप्न को एक क्षण पूर्व सत्य समझ कर उस में आनन्द ले रहे थे, उस सत्य स्वप्न को आंख के खुलते ही

एक ही क्षण में असत्य समझ लिया। एक ही क्षण पूर्व जिस सोने के खजाने को पाकर बहुत अमीर बने थे, धनी बने थे और एक ही क्षण बाद तुम जैसे के तैसे रहगये।

"मैंने कहा हां! वह तो स्वप्न था असत्य था।" योगिनी ने कहा-ठीक इसी प्रकार जब तुम्हारे ज्ञान चक्षु खुलेंगे और आत्मा का दर्शन हो जायगा तो यह संसार भी स्वप्न सदृश असत्य मालूम पड़ेगा। इस में भी एक क्षण से अधिक समय नहीं लगता।

मैंने कहा-क्याराम नाम के जाप से कोई लाभ नहीं? कलियुग में तो इसका बड़ा महात्म्य गाया गया है।

उन्होंने कहा-'बैंगन' 'बैंगन' कहने से जब हमको बैंगन भी नही मिलता है तो परमात्मा जैसी वस्तु केवल नाम लेने से कैसे मिल सकती है?

मेरे और भी प्रश्नों की उत्सुकता को देख करके श्रीमती शंकरदेव ने कहा कि आप तो घर बैठे बैठे हजार कोस दूर इंगलेण्ड को देखने को इच्छा कर रहे हो। अगर आपको इंगलैण्ड का दर्शन करना है तो आप घर छोड़ कर कष्ट उठा कर जाकर देखिए। तभी समझ में आसकता है। यहां बैठे बैठे ही यह कहना कि "इंगलैण्ड में बिना तार के तार से ही दो मित्र अलग अलग स्थानों से किस प्रकार बात कर सकते हैं या धरती के नीचे किस प्रकार गाड़ियां चलतो है। या मनुष्य कैसे आकाश में उड सकता है ये सब अविश्वसनीय है, परस्पर विरोधी है" यह ठीक नहीं। इतने में

कपिलने रोकर माता की बातों की पुष्टि की, मानो यह कहते हुए जल्दी चलो देरी हो रही है।

ऐसी महा योगिनी से प्रणाम द्वारा आज्ञा और आशीर्वाद लेकर हम चल पडे। बार बार मस्तिष्क में यही प्रश्न उठता था कि इस वृद्धा की खोपडी उल्टी तो नहीं है? कई बार यह भी मन में आता था कि कहीं हमारी ही खोंपडी उल्टी हो। मै इन विचारों के उधडे बुन में था और बच्चा गहरी नींद में सो रहा था और श्रीमती शंकरदेव यह कहती थी कि घर में गाय के लिए कडवी समाप्त होगई है। घर का किराया और उस दुकानदार का बकाया वैसे ही पडा हुवा है। डाक्टर के दवाई के बिल भी नहीं चुकाये हैं। मै स्वर्ग से पुनः भूलोक को आगया।









दी मारवाडी प्रेस लिमिटेड,
२७० अफजलगंज, हैदराबाद (दक्षिण)